इकाई 3 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता*

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान का उद्‌भव एवं नैतिकता के प्रश्न

3.2 कार्यात्मक एकता की अवधारणा, उपनिवेशवाद एवं अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता

3.3 संपर्क मानवविज्ञान, संस्कृति परिवर्तन एवं नैतिकताःएक व्यावहारिक मानवविज्ञानी के रूप में मलिनोवस्की का परीक्षण

3.4 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान , द्वितीय विश्व युद्ध एवं नैतिकता

3.5 कैमलोट परियोजना एवं मानव भू–भाग प्रणाली

3.6 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता का वर्णन एवं व्यावसायिक उत्तरदायित्व

3.7 सारांश

3.8 संदर्भ

3.9 आपकी प्रगति की जाँच के लिए उत्तर

अधिगम के परिणाम

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी सक्षम होंगेः

- मानवविज्ञान के ऐतिहासिक विकासके संदर्भ में नैतिकता को परिभाषित करने में;
- इस बात की व्याख्या करने में कि किस प्रकार औपनिवेशवाद ने अध्ययन के अंतर्गत आने वाले समुदायों के नैतिक मुद्दों की रूपरेखा तैयार की;
- इस बात की व्याख्या करने में कि किस प्रकार मलिनोवस्की ने नैतिकता एवं प्रायौगिक मानवविज्ञान को बढ़ावा दिया;
- किसी मानवविज्ञानी के लिए नैतिक मुद्दे क्या होने चाहिए, इस बात को पुनर्गठित करने में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव की व्याख्या करने में; तथा
- सांस्थानिक संगठन, एसएफएए(SfAA), द्वारा तैयार किए गए नैतिक मानदंडो की पहचान करने में।

3.0 परिचय

नैतिकता का विचार हमारे आसपास के लोगों को 'कोई नुकसान न करने' की धारणा से जुड़ा है। मानवविज्ञानी के लिए ये वे लोग हैं जो 'अध्ययन' या क्षेत्र से जुड़े हैं और जहां मानवविज्ञानी अपना क्षेत्रकार्य संचालित करते हैं। यह मानवविज्ञानियों का उत्तरदायित्व होता है कि वह इस बात को सुनिश्चित करें कि उनके द्वारा किया गया कार्य किसी भी तरह लोगों तथा उनके सामाजिक–सांस्कृतिक ताने–बाने को हानि न पहुंचाए। बल्कि यह एक कठिन मुद्दा है, चूंकि विभिन्न संदर्भों में क्षेत्रकार्य में नवीन चुनौतियाँ होती हैं तथा क्षेत्रकार्य कर रहे मानव विज्ञानियों अथवा क्षेत्र कार्यकर्ताओं

*डॉ प्रशांत खत्री, मानवविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज,उ.प्र.

(फील्ड वर्करों) को उन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है तथा नैतिकता के उन मुद्दों को सुलझाना पड़ता है जो उत्पन्न हो सकती हैं। यही कारण है कि सभी परिस्थितियों में एक सार्वभौमिक नैतिक संहिता को लागू करना एक आदर्शलोक स्थापित करने जैसा है। फिर भी, मानव विज्ञानियों को यह स्मरण रहना चाहिए कि उनका प्राथमिक लक्ष्य उन लोगों की रूचियों की रक्षा करना है, जिनके साथ वह काम कर रहे हैं। उन्हे इस तथ्य के प्रति भी सचेत रहना चाहिए कि उनके द्वारा किये गए शोधकार्य का उपयोग प्रशासकों द्वारा लोगों के लिए नीतियों का कार्यान्वयन करने के लिए भी किया जा सकता है। इस प्रकार व्यावहारिक मानवविज्ञान को उस मानवविज्ञान के रूप में देखा जा सकता है जो शुद्ध शोधकार्य एवं प्रशासन के बीच एक सेतु का काम करता है। अन्य शब्दों में, मानव वैज्ञानिक ज्ञान एवं शोधकार्य परिणामों का उपयोग नीति निर्माण करनेवालों एवं प्रशासकों द्वारा किया जा सकता है। यह हमें व्यावहारिक मानवविज्ञान के प्रारम्भ के बारे में एक महत्त्वपूर्ण समझ बनाने में सहायता प्रदान करता है। इस बारे में तर्क–वितर्क किया जाता रहा है कि मानव वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग स्वयं में मानवविज्ञान विषय जितना ही पुराना है। यह इस बात की ओर भी इंगित करता है कि नैतिक मुद्दे मानव वैज्ञानिक ज्ञान एवं सिद्धान्त के प्रयोग का एक महत्त्वपूर्ण भाग थे (पोडोलेफ़्स्की, एवं अन्य 2003)।

मानववैज्ञानिक ज्ञान, जिसकी उत्पत्ति मानव संस्कृति एवं जैविक विविधताओं की व्याख्या करने के लिए हुई, का उपयोग औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा अपने औपनिवेशवाद के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था। कोई भी ज्ञान राजनीति और उस व्यापक सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य से रहित नहीं है जिसमें वह उत्पन्न होता है और उपयोग में लाया जाता है। इस अर्थ में नैतिकता का पूरा मुद्दा एक बहुत ही संबंधपरक विषय बन जाता है। तत्पश्चात यह प्रश्न उठता है कि इस ज्ञान का उपयोग कर कौन रहा है और किस उद्देश्य के लिए। सम्पूर्ण विश्व विभिन्न शिविरों में विभाजित प्रतीत होता है, जिनका मार्गदर्शन कुछ निश्चित विचारधाराओं द्वारा होता है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसी विचारधाराएँ हैं जो आर्थिक विकास के मुद्दे को आगे बढ़ाती हैं जिसके लिए बांध निर्माण करने एवं धातुओं के उत्खनन की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, कुछ विचारधाराएँ हैं जो उन लोगों के मुद्दे को आगे बढ़ाती हैं जो इन बड़ी परियोजनाओं से प्रभावित होते हैं। चूंकि, इनके कारण उन लोगों की जमीन चली जाती है और उनकी पूरी पारिस्थितिकी तंत्र नष्ट हो जाता है। अब नैतिकता का मुद्दा एक ऐसे मार्ग पर आ जाता है जिसका कोई अंत नहीं है तथा आगे बढ़ते ही यह और जटिल हो जाता है। उन मानव विज्ञानियों को, जो लोगों के लिए आवाज़ उठाते हैं तथा बड़ी परियोजनाओं का विरोध इस आधार पर करते हैं कि इनमें एक बड़े पैमाने पर लोगों को इसकी कीमत चुकनी पड़ती है, उन्हे प्रशासकों एवं नीति निर्माण करने वालों द्वारा विकास–विरोधी की दृष्टि से देखा जा सकता है। इसी प्रकार मानवविज्ञानी ऐसी नीतियों को, जो लोगों से उनकी ज़मीन और जंगल छीन ले, अनैतिकता के रूप में देखते हैं।

इसलिए यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि नैतिकता को क्या करें और न करें को मात्र एक सूची के रूप में नहीं बल्कि एक विमर्श के रूप में देखा जाए। अन्य शब्दों में, नैतिकता वह होती है, जिसका अर्थ अलग–अलग हितधारकों के लिए भिन्न–भिन्न वस्तु होता है। यह समझ एक समुदाय के विषम परिप्रेक्ष्य पर आधारित है। जब यह कहा जाता है कि एक अनुप्रयुक्त मानवविज्ञानी का प्राथमिक लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि नीति निर्माण में समुदाय का प्रतिनिधित्व किया जाता है और इसमें

परिवर्तन की कल्पना की जाती है, तो प्रश्न उठता है कि समुदाय का निर्माण कौन करता है? क्या समुदाय का हर समय और हर जगह पूरी तरह प्रतिनिधित्व किया जा सकता है? समुदाय में विभिन्न हित समूह कौन से हैं जो किसी भी परियोजना से अलग तरह से प्रभावित होते हैं? यह भी तर्क दिया गया है कि स्वदेशी ज्ञान को परिवर्तन एजेंटों का मार्गदर्शन करना चाहिए और नीति को अधिक समावेशी और जन केंद्रित बनाने के लिए स्वदेशी दर्शन को शामिल किया जाना चाहिए। हालांकि, फिर सवाल उठता है कि हमें किसके स्वदेशी ज्ञान को ध्यान में रखना चाहिए? इस संबंध में कुछ संघर्ष या मतभेद हो सकते हैं और एक समुदाय या किसी परियोजना से प्रभावित होने वाले लोग इस विषय पर अलग–अलग विचार रख सकते हैं। इस प्रकार इस संदर्भ में भी नैतिक मुद्दे कुछ हद तक छलावे वाले हो जाते हैं (नेम एवं रिंकर, 2016)।

इस इकाई में हम उन नैतिक मुद्दों के बारे में जानेंगे जो मानवशास्त्रीय ज्ञान के प्रयोग से जुड़े हैं। मानवशास्त्रीय प्रतिमानों के विभिन्न बदलावों ने मानवशास्त्रीय ज्ञान के अनुप्रयोग से संबंधित विभिन्न नैतिक मुद्दों को जन्म दिया। हम यह भी देखेंगे कि किस प्रकार व्यावसायिक अनुप्रयुक्त मानवविज्ञानियों के कुछ संगठनों ने अनुप्रयुक्त(व्यवहारिक) मानवविज्ञान के लिए आचार संहिता बनाने का प्रयास किया है।

अपनी प्रगति जांचें

1) अनुप्रयुक्त मानवविज्ञानियों का प्राथमिक लक्ष्य क्या होना चाहिए?

.....

.....

.....

.....

.....

3.1 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान का उद्‌भव एवं नैतिकता के प्रश्न

एक विषय के रूप में मानवविज्ञान का उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। यह मात्र आंकड़ों एवं सिद्धान्त की एकजुटता के कारण ही संभव हो पाया था। 'अन्य' के बारे में आंकड़े 'नृवंशविज्ञानों' के रूप में उपस्थित थे, जिन्हें एकत्रित करने के प्रयास धर्म–प्रचारकों, फ़ौजियों, यात्रियों एवं प्रशासकों द्वारा किए गए। इन आंकड़ों द्वारा प्रस्तुत किया गया मुख्य प्रश्न था– सांस्कृतिक मूल्यों में भिन्नता वाले विभिन्न प्रकार के समाज क्यों मौजूद हैं? इस प्रश्न का उत्तर क्रमागत उन्नति के सिद्धान्त द्वारा उपलब्ध हो पाया। इस बात पर तर्क–वितर्क किया गया कि विभिन्न संस्कृतियाँ क्रमागत उन्नति के विभिन्न चरणों में हैं तथा वह सभी मानव सभ्यता के उस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए एक समान चरणों से होकर गुजरेंगी जिनका उदाहरण पश्चिम देशों ने प्रस्तुत किया है। इसने पश्चिम देशों पर एक प्रकार के कर्तव्यपरायणता एवं नैतिकता का उत्तरदायित्त्व बढ़ा दिया। किसी 'असभ्य' को सभ्य' बनाना एक श्वेत व्यक्ति की ज़िम्मेदारी समझा जाने लगा। इसलिए नैतिकता के मुद्दे को मानवविज्ञान के विषय की उत्पत्ति के साथ ही लिपटा हुआ देखा जा सकता है। यह श्वेत व्यक्तियों की ज़िम्मेदारी समझी गयी कि वह इस बात को सुनिश्चित करें कि हर व्यक्ति हर

जगह सभ्यता के लाभ का आनंद ले तथा अपने से 'निम्न' भाई–बहनों को सभ्यता के निष्कर्ष तक अधिक तीव्रता से पहुँचने में सहायता करें। मानवविज्ञान में क्रमागत उन्नति के परिप्रेक्ष्य को मानवीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रमागत उन्नति की प्रक्रिया एवं चरणों के प्रश्न के साथ जोड़कर देखा गया। इस ज्ञान को उत्संस्करण की प्रक्रिया में प्रयोग किया जाना था, ताकि उन लोगों की सहायता की जा सके जो अभी तक 'असभ्यता' एवं 'जंगलीपन' के चरणों से ही गुज़र रहे थे। इसलिए ऐसा कहा जा सकता है कि मानवविज्ञान के उद्भव के साथ ही, इस विषय के व्यावहारिक आयाम का भी उद्भव हुआ। ऐसा भी कहा जा सकता है कि मानव वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करते हुए लोगों को उनके सांस्कृतिक विकास एवं उन्नति के चरणों के आधार पर वर्गीकृत करने तथा उन्हे अपनी संस्कृति के सर्वोत्तम स्तर तक पहुँचने में सहायता करने के साथ ही नैतिकता के सम्पूर्ण मुद्दे का उद्भव हुआ(बास्टाइड, 1974)।

विकासवाद के सिद्धान्त ने उपनिवेशवाद की अवधारणा को भी प्रोत्साहित किया। विकासवाद ने उपनिवेशवाद को और अधिक नैतिक दिखने में सहायता की, चूंकि यह तर्क दिया गया कि उपनिवेशित लोगों की उन्नति एवं विकास के लिए पाश्चात्य प्रभुत्त्व एवं प्रशासन अनिवार्य था। विकासवाद के सिद्धान्त को औपनिवेशिक राज को वैधता प्रदान करने के लिए प्रयोग किया गया। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकासवाद की अवधारणा को प्रस्तुत करने को अपने आप में वैज्ञानिक समझा गया। चूंकि इस सिद्धान्त को शारीरिक विज्ञानों में चार्ल्स डार्विन के कार्यों द्वारा अच्छे से स्थापित किया था तथा ऐसा सोचा गया था कि समाज का अध्ययन करने के लिए प्रकृतिक सिद्धांतों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, मानव सभ्यता प्रक्रिया में चरण के आधार पर विभिन्न संस्कृतियों को वर्गीकृत करने को स्वयं एक वैज्ञानिक कार्य माना गया। इसलिए विकासवाद की जुड़वां अवधारणाओं एवं विज्ञान को विश्व भर में लोगों के कुछ निश्चित समूहों पर प्रभुत्त्व स्थापित करने के लिए प्रयोग किया गया था। विकासवाद के सिद्धान्त ने एक जातीयतावाद केन्द्रित (एथनोसेंट्रिक) पूर्वाग्रह को जन्म दिया जिसे अनैतिक समझा जा सकता है(बास्टाइड,1974)।

अपनी प्रगति जांचें

2) 19वीं शताब्दी के मध्य में मानवशास्त्रीय ज्ञान के अनुप्रयोग में शामिल नैतिक मुद्दों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) मानवशास्त्रीय ज्ञान के प्रयोग को औपनिवेशिक लक्ष्यों और उद्देश्यों को बढ़ावा देने के साथ कैसे जोड़ा जाता है?

.....

.....

.....

.....

अगला चरण जो जातीयतावाद की आलोचना से विकसित हुआ, वह सांस्कृतिक सापेक्षवाद का था। फ्रांज़ बोआस द्वारा प्रसारित यह दृष्टिकोण इस समझ पर आधारित था कि कोई भी संस्कृति एक दूसरे से वरिष्ठ अथवा हीन नहीं होती। सभी संस्कृतियों को उनके अपने संदर्भ में देखा जाना चाहिए। हालांकि इस भावना का पालन नहीं किया गया। मानव विज्ञानियों ने यह तर्क दिया कि सांस्कृतिक सापेक्षवाद विकासवाद के सिद्धान्त का ही दूसरा नाम है। यह भी तर्क दिया गया कि पश्चिम देशों ने पूंजीवादी लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए सापेक्षवाद की अवधारणा का उपयोग किया। हालांकि, 'अन्य संस्कृति' के साथ और अधिक सम्मानित ढंग से व्यवहार किया गया परंतु परिवर्तन, यदि कोई है, तो वह पश्चिम देशों की ओर उन्मुख होना चाहिए (बास्टाइड,1974)।

3.2 कार्यात्मक एकता की अवधारणा, उपनिवेशवाद एवं अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता

जब हम औपनिवेशिक कालीन मानवविज्ञान की ओर मुड़कर देखते हैं, तो हम पाते हैं कि औपनिवेशिक लक्ष्य एवं उद्देश्य मानव वैज्ञानिक ज्ञानोत्पत्ति के केंद्र बिन्दु थे। तथाकथित 'प्रगतिशील' सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं को जब एक आलोचनात्मक एवं उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया जाता है, तो उससे अनेक नैतिक मुद्दे निकलकर आते हैं जिनके लिए मानव वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग किया गया था। यह मात्र प्रशासक ही नहीं थे जिन्होंने उस ज्ञान का उपयोग किया अपितु मानवविज्ञानी भी 'अन्य' के बारे में उस प्रकार के ज्ञान एवं समझ का सृजन करने की प्रवृत्ति रखते थे जो उपनिवेशवाद के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का समर्थन करती थी। यह काफी हद तक इस तथ्य के कारण था कि ब्रिटिश उपनिवेशों में अधिकांश मानवशास्त्रीय शोध अंग्रेजों के प्रशासनिक नियंत्रण में किए गए थे और प्रशासन द्वारा वित्त पोषित थे। प्रकार्यवाद के पूरे सिद्धांत और कार्यात्मक एकता के विचार को जो उसने प्रतिपादित किया, उसकी आलोचना विचार और शासन की औपनिवेशिक प्रणाली से प्रभावित होने के कारण की गई है।

विकासवाद के सिद्धांत के प्रति ब्रिटिश प्रतिक्रिया बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में प्रकार्यवाद के विचार में आई। सामाजिक विकासवाद के काल्पनिक होने के कारण इसकी आलोचना की गई थी। इसे सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के एक बहुत ही भव्य और सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में देखा गया था, जिसे इतने बड़े पैमाने पर सबूतों के आधार पर साबित करना असंभव था। सभी संस्कृतियों को विकास के चरणों में वर्गीकृत करना लगभग असंभव था। इसके अलावा, आर्मचेयर मानवविज्ञान और जातीयतावाद को बढ़ावा देने के कारण इसकी आलोचना की गई थी। इसी संदर्भ में प्रकार्यवाद का उदय हुआ। इसने मूल निवासियों की भाषा सीखकर गहन और लंबे क्षेत्रकार्य आयोजित करके समाजों का अध्ययन करने की बात की। इसने समाज का अध्ययन करने के लिए जैविक सादृश्य के विचार को बढ़ावा दिया। हर्बर्ट स्पेंसर के बाद, प्रकार्यवादियों का मानना था कि समाजों का अध्ययन मानव जीव की तरह ही किया जाना चाहिए। जिस प्रकार मानव शरीर में विभिन्न अंग होते हैं जो संपूर्ण को बनाए रखने के लिए कार्य करते हैं, उसी तरह, समाज में विभिन्न संस्थाएं होती हैं जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए मिलकर काम करती हैं। यही कार्यात्मक एकता की अवधारणा है। समाजों को इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के भीतर ही स्थिर संस्थाओं के रूप में माना गया था। "1930 और 1955 के बीच इस (क्रियात्मक)

संप्रदाय द्वारा दिया गया योगदान यूरोपीय, विशेषकर अंग्रेज़ी प्रदेशों में स्थित अफ्रीकी आदिवासी समाजों में किए गए क्षेत्रकार्य पर आधारित था। ऐसी परिस्थितियों में इस स्कूल के सदस्यों के प्रायोजन, रोजगार और अप्रत्यक्ष सहयोग के साथ, सामाजिक प्रणालियों के अध्ययन के प्रस्ताव के बीच संबंध बनाना असंभव नहीं है। उदाहरण के लिए; जैसे कि वे एकान्त में थे और जैसे कि वे कालातीत थे और अब समाप्त हो चुकी औपनिवेशिक व्यवस्था के साथ (हैरिस, 1968: 516) रहते थे। समाजों और उनमें परस्पर महत्त्वपूर्ण विरोधाभास एवं मतभेद थे परंतु कार्यात्मक एकता की अवधारणा को आगे बढ़ाने के लिए उनको अनदेखा कर दिया जाता था।

ब्रिटिश उपनिवेशों ने विभिन्न समाजों और संस्कृतियों का अध्ययन न केवल सिद्धांत बनाने के लिए किया बल्कि उनका अध्ययन इस लिए भी किया ताकि ब्रिटिश प्रशासक नीतियां बना सकें। रैडक्लिफ ब्राउन ने अपनी पुस्तक–*अफ्रीकन सिस्टम्स ऑफ किनशिप एंड मैरेज* की प्रस्तावना में लिखा है कि "इस पुस्तक को मात्र मानव विज्ञानियों द्वारा ही नहीं पढ़ा जाएगा, अपितु कुछ ऐसे लोगों द्वारा भी पढ़ा जाएगा जो अफ्रीकन महाद्वीप में औपनिवेशिक सरकारों के लिए नीतियों को सूत्रबद्ध अथवा क्रियान्वयन करने के लिए ज़िम्मेदार हैं"। यह स्पष्ट है कि मानवशास्त्रीय ज्ञान का सृजन औपनिवेशिक प्रणालियों और दृष्टिकोणों द्वारा निर्देशित और सीमित था। हम ब्रिटिश उपनिवेशों, विशेषकर अफ्रीका में राजनीतिक संगठनों के अध्ययन से एक और उदाहरण ले सकते हैं। 1940 में, मेयर फोर्ट्स और इवांस–प्रिचर्ड ने अफ्रीकी राजनीतिक प्रणालियों पर एक पुस्तक का संपादन किया। यह पुस्तक बड़े पैमाने पर राजनीतिक व्यवस्था के एक समकालिक दृष्टिकोण से संबंधित थी और इसका उद्देश्य पश्चिम में प्रशासकों के पेशेवर दर्शकों के लिए था। अफ्रीका में जनजातीय समुदायों के बीच राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन अन्य संस्थानों जैसे नातेदारी, आर्थिक और धर्म के हिस्से के रूप में किया गया। नृवंशविज्ञान (एथेनोग्राफी) पर ध्यान केंद्रित करने की विधि ने राजनीतिक व्यवस्था के ऐतिहासिक और संबंधपरक आयामों को लगभग पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था। मार्विन हैरिस (1968) लिखते हैं– "लगभग साढ़े तीन सौ सालों तक "काला महाद्वीप" का उपयोग सस्ते और सीधे–साधे श्रमिकों को पैदा करने की धरती के रूप में होता रहा। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि चार सौ लाख अफ्रीकी किसी न किसी तरह से गुलामों के व्यापार का शिकार बने, हालांकि उनमें से थोड़े से ही, संभवतः मात्र एक सौ चालीस लाख ही उनमें समुद्र पार के अपने गंतव्य स्थानों तक जीवित पहुँच पाये। इस विपत्ति में फँसने से पहले उन्हे युद्धोत्तर प्रभावों, प्रवासों, राजनैतिक उथल–पुथल एवं विस्तृत जनसांख्यिकीय परिवर्तनों से गुजरना पड़ा था। इस प्रकार के संदर्भ में, अनुभववाद के नाम पर 1930 के दशक के एथनोग्राफी पर प्रतिबंध वर्तमान तक सीमित होना, प्रशंसा करने योग्य नहीं है(पृ.सं. 536)"। उस प्रकार के मानव वैज्ञानिक कार्य औपनिवेशिक स्वामियों के प्रयोजनों को सिद्ध करने तक ही सीमित थे तथा उन्होने संपूर्णतः उन कठिनाईयों एवं अत्याचारों को अनदेखा किया जिसका सामना उपनिवेशवाद के नाम पर लोगों ने किया।

अपनी प्रगति जांचें

4) रैडक्लिफ ब्राउन की कौन सी प्रसिद्ध पुस्तक अफ्रीका में औपनिवेशिक नीतियों के निर्माण के बारे में बात करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 संपर्क मानवविज्ञान, संस्कृति परिवर्तन एवं नैतिकताः एक व्यावहारिक मानवविज्ञानी के रूप में मलिनोवस्की का परीक्षण

मानवविज्ञान की शुरुआत परिवर्तन के अध्ययन से हुई। विकासवादी इस बात से चिंतित थे कि समाज एक चरण से दूसरे चरण में कैसे बदलता है। हालांकि, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, शास्त्रीय विकासवाद अनुमान लगाने और आर्मचेयर मानवविज्ञान को बढ़ावा देने के कारण प्रसिद्ध नही हुआ। इस कमी को बाद के सैद्धांतिक सूत्रीकरण और मानवविज्ञान में प्रतिमान में सुधारा गया था जिसे हम प्रकार्यात्मकता के रूप में जानते हैं। इसने समाज के एक समकालिक अध्ययन को बढ़ावा दिया जिसका अर्थ है तत्क्षण रूप(यहाँ और अभी) में समाज का अध्ययन करना था। मालिनोवस्की कार्यात्मक दृष्टिकोण और समकालिक अध्ययन के अग्रणी बन गए। उन्होंने प्रकार्यवादी परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय समाजों को उनकी समग्रता में जानने में अधिक रुचि दिखाई। हालांकि, यह कल्पना करना गलत होगा कि प्रकार्यवादियों के बीच परिवर्तन की अवधारणा पूरी तरह से अनुपस्थित थी। 1929 और 1943 के बीच मालिनोवस्की ने संस्कृति परिवर्तन पर कई लेख लिखे। इन लेखों को उनके एक छात्र द्वारा एक पुस्तक के रूप में एक साथ रखा गया और 1945 में *द डायनेमिक्स ऑफ कल्चर चेंज* के रूप में प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक में मालिनोवस्की ने 'संपर्क मानव विज्ञानियों' की भूमिका के बारे में बात की, जिसका अर्थ यह है कि वह मानवविज्ञानी संस्कृति संपर्क के अध्ययन में शामिल थे। औपनिवेशक एवं उपनिवेशित संस्कृतियों के बीच संपर्क के कारण, परिवर्तन होना निश्चित था। मालिनोवस्की के अनुसार, तब यह मानव विज्ञानियों का उत्तरदायित्त्व था कि वह इस प्रकार के परिवर्तन को सुगम बनाएँ ताकि दोनों संस्कृतियों के बीच एक प्रकार के समझौते की परिस्थिति तक पहुंचा जा सके। मानवविज्ञानी उपनिवेशकों को सांस्कृतिक संस्थानों की एक सम्पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करते हुए अपना वैज्ञानिक योगदान देने की अपनी जिम्मेदारियों में बंधे हुए थे, ताकि उपनिवेशकों एवं उपनिवेशितों के बीच एक 'परस्पर लाभदायक सामंजस्य' तक पहुंचा जा सके(हैरिस, 1968)।

मालिनोवस्की ने 'प्रायौगिक मानवविज्ञानियों' के लिए नैतिक संहिता का प्रारूप भी तैयार किया जिसमें 'समभाव, समझौता एवं नागरिक सेवा शिष्टाचार' शामिल थे। उन्होंने इसका श्रेणीबद्ध तरीके से उल्लेख किया कि वे मानव वैज्ञानिक जिन्होंने संस्कृति संपर्क का अध्ययन किया है, उनकी यह ज़िम्मेदारी बनती है कि वह अपनी खोजों को इस प्रकार से प्रस्तुत करें जिससे नीति निर्माण करने वालों को सहायता मिले। वह आगे कहते हैं कि स्थानीय लोगों की वकालत करना मानव विज्ञानियों की ज़िम्मेदारी बनती है परंतु वह इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकता तथा निर्णय नीति निर्माण करने वाले एवं जो सरकार में हैं उनके द्वारा लिए जाएंगे। वह आगे संपर्क नृजातीय वैज्ञानिकों द्वारा किए जाने वाले कामों का भी प्रारूप तैयार करते है – एक व्यावहारिक विशेषज्ञ के रूप में होते हुए "सम्मिलित सभी कारकों के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाश में दूरदर्शिता एवं भविष्यवाणी करने तथा असंन्या प्रश्नों पर

निपुणता के साथ सलाह देने की क्षमता रखना (हैरिस, 1968:557)"। हैरिस ने तर्क दिया कि एक व्यावहारिक विशेषज्ञ के रूप में कार्य करना तथा प्रशासकों को शासन चलाने में आवश्यक ज्ञान उपलब्ध करवाना मानव विज्ञानियों को अपने नैतिक मूल्यों से मुक्ति नहीं दिला सकता। इसके अतिरिक्त, दो संस्कृतियों के बीच जिस 'समझौते' की बात की जा रही है, वह सदैव अधिक शक्तिशाली के पक्ष होगा तथा कभी भी सह–संवेदी नहीं हो सकता। यह इस दृष्टिकोण से भी अनैतिक है कि किस प्रकार के समझौते की बात की जा रही है? यह कुछ ऐसा है जैसे मानवविज्ञानी शोषित एवं वंचितों को समभाव का उपदेश देना चाहते हैं। क्या कभी दशकों एवं शताब्दियों से एक साथ उत्पीड़न झेल रहे लोगों के साथ समझौते के बारे बात की जा सकती है? इसके लिए मलिनोवस्की ने कार्यात्मकता एवं मानवविज्ञान के प्रायौगिक मूल्य का प्रारूप तैयार किया, जब वह कहते हैं कि –"उस प्रकार के सिद्धान्त (कार्यात्मकता) का प्रायौगिक मूल्य यह है कि यह हमें विभिन्न रिवाजों के सापेक्ष महत्त्व के बारे में यह सिखाता है कि कैसे वह एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं, किस प्रकार धर्म–प्रचारकों, उपनिवेशी प्राधिकरणों तथा वह जिन्हे जंगली व्यापार एवं जंगली श्रमिकों का आर्थिक शोषण करना है, द्वारा उनसे साथ किस प्रकार व्यवहार करना है"(मलिनोवस्की 1927:40–41)। इस कथन से स्पष्ट है कि प्रकार्यवाद के सिद्धांत का व्यावहारिक मूल्य जंगली व्यापार और श्रम का शोषण करना था। इस प्रकार मानवविज्ञान को मिशनरियों और औपनिवेशिक अधिकारियों की सहायता के लिए उपयोग किया जाना था। अंत में, यह कहा जा सकता है कि मालिनोवस्की को मानवशास्त्रीय ज्ञान के अनुप्रयोग के साथ–साथ नैतिक मुद्दों का बोझ उठाना पड़ा (हैरिस, 1968)।

अपनी प्रगति जांचें

5) अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में मालिनवोस्की के विचार से जुड़े नैतिक मुद्दे क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3.4 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान, द्वितीय विश्व युद्ध एवं नैतिकता

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान युद्ध प्रयासों में मानव विज्ञानियों को अपने विशेष ज्ञान का योगदान करने के लिए आह्वान किया गया। विषय से सामीप्य के कारण एवं विश्वभर से विभिन्न क्षेत्रों के बारे में एकत्रित किए गए गहन ज्ञान ने उन्हें युद्ध के दौरान अति–महत्त्वपूर्ण बना दिया। उनका आह्वान मूलतः शत्रु देशों की संस्कृतियों एवं उनके राष्ट्रीय चरित्र को जानने के लिए किया गया था ताकि युद्ध को मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी लड़ा जा सके। उनके ज्ञान को युद्धोत्तर काल में पुनर्वास कार्यक्रमों के आयोजन में भी उपयोग किया गया। युद्ध प्रयासों में मानव वैज्ञानिक योगदानों ने सांस्कृतिक ज्ञान एवं मानव वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग को युद्ध प्रयासों का संचालन करने तथा उन्हें बनाए रखने के कारण गंभीर नैतिक मुद्दों जन्म दिया। आमतौर पर यह कहा जाता है

कि युद्ध बंदूकों और पुस्तकों, दोनों के साथ लड़ा गया था। मानव वैज्ञानिक ज्ञान को सैन्य नीति निर्माण के स्तर पर उपयोग किया गया था।

विद्वानों ने नाजियों के अधीन मानवविज्ञान और जर्मन युद्ध प्रयासों के बीच की कड़ी को समझने की कोशिश की है। इस मुद्दे पर काम करने वाले रॉबर्ट प्रॉक्टर के अनुसार, नाजी जर्मन और मानवविज्ञान के बीच एक महान संबंध था। केवल कुछ मानवविज्ञानी थे जो नस्लीय विज्ञान के विचार के विरोध में थे क्योंकि यह नाजी शासन द्वारा नियोजित किया गया था। प्रॉक्टर ने यह भी पाया कि केवल मुट्ठी भर मानवविज्ञानियों ने जर्मनी से यहूदियों के निष्कासन का विरोध किया। कुछ गैर–जर्मन मानवविज्ञानी भी नस्लीय पदानुक्रमों पर विचार रखते थे और नाजियों के साथ तालमेल रखते थे। उदाहरण के लिए, ई. ए. हूटन निरंतर यह कहते रहे कि भविष्य की पीढ़ियों में यदि अच्छे प्रजातीय गुण बनाए रखने के लिए, हमें राष्ट्रीय प्रजनन विभाग की आवश्यकता है, जो इस बात की राय दे कि कौन किसके साथ प्रजनन करे। कुछ ऐसे यूरोपीय मानवविज्ञानी भी थे जो इवान्स प्रिचार्ड एवं एस. एफ. नाडेल की तरह युद्ध प्रयासों में शामिल हो गए(प्राइस, 2002)।

जहां तक द्वितीय विश्व युद्ध की धारणा का संबंध था, अमेरिका में स्थिति थोड़ी भिन्न थी। युद्ध को 'अच्छे' के रूप में देखा गया क्योंकि इसे नाजी जर्मनी के खिलाफ निर्देशित किया गया था। मानवशास्त्रीय विचार भी नस्ल की बोसियन समझ से प्रभावित थे जो किसी श्रेणीबद्ध समझ पर आधारित नहीं थी। नाजियों को मानवविज्ञान के मूल सिद्धांतों का दुश्मन माना जाता था। मानवविज्ञानी युद्ध के प्रयासों में अमेरिकी सरकार की मदद को एक वीरतापूर्ण कार्य मानते थे। जैक हैरिस जैसे मानव विज्ञानियों ने पश्चिम अफ्रीका में ऑफिस ऑफ स्ट्रेटेजिक सर्विसेस के लिए खूफिया जानकारियाँ एकत्रित करना आरंभ कर दिया, जिसे अब सी.आई.ए. के रूप में जाना जाता है। वह एक मानववैज्ञानिक क्षेत्र कार्यकर्ता बनकर वहाँ गये, हालांकि उसका मुख्य कार्य खूफिया जानकारी जुटाना था। यह भी एक तथ्य है कि अमरीका में कुछ मानवविज्ञानी युद्ध प्रयासों में मानव वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग की अवधारणा के विरुद्ध थे। ऐसी आवाज़ों को हालांकि सरलता के साथ अनदेखा कर दिया जाता था। अमेरीकन एंथ्रोपोलोजिकल एसोशिएशन (एएए) ने एक प्रस्ताव पारित किया कि मानवविज्ञानी एवं उनका ज्ञान युद्ध प्रयासों के लिए सरकार की सेवार्थ उपलब्ध रहेगा। फ्रेड एगन उस समय एएए के सचिव थे तथा उसने यह सूचित किया कि 1943 तक आधे से अधिक मानवविज्ञानी अमरीका में प्रत्यक्ष रूप से युद्ध का समर्थन कर रहे थे एवं अन्य आधे किसी न किसी अन्य रूप में युद्ध प्रयासों में योगदान कर रहे थे(प्राइस, 2002)।

रूथ बेनेडिक्ट द्वारा किया गया इस प्रकार का एक अध्ययन यहाँ उल्लेख करने योग्य है। युद्ध जानकारी के स. रा. कार्यालय ने उन्हे जापानी संस्कृति पर एक अध्ययन करने के लिए कहा था ताकि जापान में अपने अमरीकी आधिपत्य की परिस्थिति में उन्हे प्रशासित करना सरल हो सके। वह जापानी संस्कृति, उनके सोचने के तरीकों तथा समस्त व्यक्तित्त्व के बारे में जानना चाहते थे। मस्तिष्क में इन उद्देश्यों को लेकर बेनेडिक्ट ने अमरीका में जापानी युद्ध बंदियों पर अध्ययन किया। इस प्रकार के अध्ययन को 'दूरस्थ संस्कृति' का अध्ययन करने के रूप में जाना गया। उनका यह अध्ययन एक पुस्तक में परिणत हुआ, जिसका शीर्षक था –*क्रिसेंथेमम एंड द स्वोर्ड।*

यह जापानी संस्कृति एवं व्यक्तित्त्व पर आधारित आज तक की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों में से एक है(प्राइस, 2002)।

हालांकि, जैसा की पहले उल्लेख किया जा चुका है, कुछ मानवविज्ञानी, मानव विज्ञानियों द्वारा युद्ध को समर्थन करने की अवधारणा के साथ सहज नहीं थे। वह इस प्रकार की संधि से जुड़े नैतिक मुद्दों के बारे अधिक चिंतित थे। उन्होने इस संदर्भ में मानव विज्ञानियों की भूमिका की आलोचना की। यह एम. जे. हर्स्कोविट्स ही थे जिन्होंने मानव विज्ञानियों द्वारा उस स्थान पर लोगों के विरुद्ध अपने ज्ञान के उपयोग से जुड़े नैतिक मुद्दों को उठाया, जहां पर वह अपने क्षेत्रकार्य का संचालन करते थे। उनका मत था कि चूंकि वैज्ञानिक एवं लोग किसी विशेष राष्ट्रीयता से संबंध रखते हैं, उनके उस राष्ट्र के प्रति कुछ उत्तरदायित्त्व बनते हैं। बहरहाल, वह मानवविज्ञानी उन लोगों के प्रति भी अत्यधिक ऋणी होते हैं जिनसे वह आंकड़े एकत्रित करते हैं, शोध प्रबंध लिखते हैं तथा अपने विषय तथा राष्ट्र में प्रसिद्धि पाते हैं(प्राइस, 2002)।

फ्रांज़ बोआस, जो अमरीका में प्रमुख मानव विज्ञानियों में से एक थे, मानव विज्ञानियों द्वारा संयुक्त राष्ट्रों के युद्ध प्रयासों के समर्थन करने की अवधारणा के विरुद्ध थे। वह विशेष रूप से उस अवधारणा के विरुद्ध थे जिसके अंतर्गत मानवविज्ञानी मानव वैज्ञानिक शोधकार्य का संचालन करने की आड़ में जासूसी के कार्य में संलिप्त थे। उन्होंने यहां तक कहा कि उस प्रकार के मानव विज्ञानियों को स्वयं को वैज्ञानिक नहीं कहना चाहिए(फेरेरो एवं एंड्रेत्ता, 2014)।

अपनी प्रगति जांचें

6) द्वितीय विश्व युद्ध के संदर्भ में अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

35 कैमलोट परियोजना एवं मानव भू–भाग प्रणाली

कैमलोट परियोजना एवं मानव भू–भाग प्रणाली बहुत निकटता के साथ अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में सम्मिलित नैतिक मुद्दों के साथ संबन्धित हैं। 1964–65 के दौरान, सं. रा. सेना ने छह मिलियन यूएस डॉलर वाली एक परियोजना को वित्त–समर्थन दिया जिसे 'कैमलोट परियोजना' के नाम से जाना जाता है। इस परियोजना का उद्देश्य था रणनीतिक क्षेत्रों में क्षेत्रकार्य का संचालन करना एवं उन क्षेत्रों एवं प्रान्तों में हो रही संभावित क्रांतियों के बारे में आंकड़े एकत्रित करना जहां पर सं. रा. सेना तथा सं. रा. सरकार की रणनीतिक दिलचस्पियाँ हैं। एशिया, लैटिन अमरीका, अफ्रीका तथा यूरोप इन प्रान्तों में शामिल हैं। इस परियोजना के अंतर्गत सं. रा. में रहने वाले अनेक प्रसिद्ध मानव विज्ञानियों की सेवाओं को लिया जाना था। कुछ सरकारें उनके देशों में आने वाली इस परियोजना के बारे में जानने के लिए अत्यधिक आतुर थी चूंकि, इसने प्रत्यक्ष रूप से उनकी संप्रभुता को प्रभावित किया था। उदाहरण के लिए चिली देश ने

इस परियोजना को अपने आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप की दृष्टि से देखा। इसी परियोजना में शामिल इन प्रतिरोधों एवं नैतिकता के मुद्दों के कारण, जैसे ही इस परियोजना के निदेशक की नियुक्ति हुई, वैसे ही इस परियोजना को बंद कर दिया गया। हालांकि, इस परियोजना ने मानवविज्ञान विषय के लिए कुछ परिणाम प्रस्तुत किए। इस परियोजना के औचित्य एवं मानव विज्ञानियों को यह विश्वास दिलाने के लिए भ्रमित किया गया कि इस परियोजना का उद्देश्य एक वैज्ञानिक अध्ययन करना था, जिससे जुड़े मुद्दों के इर्द–गिर्द मानवविज्ञान के अंदर ही एक बहस चल पड़ी। मानवविज्ञानियों को इस तर्क के साथ विश्वास दिलाया गया कि परियोजना सामाजिक मुद्दों पर महत्वपूर्ण डेटा एकत्र करने के लिए थी और इससे किसी भी तरह से राष्ट्रों की आंतरिक संप्रभुता को प्रभावित नहीं होगी। चाहे जो भी परिस्थिति रही हो, इस परियोजना ने मानवविज्ञान के विषय एवं मानव विज्ञानियों के काम की प्रकृति के संबंध में लोगों की अनुभूति में परिवर्तन ला दिया। सभी प्रकार के मानव वैज्ञानिक कार्यों को अब संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा था। मानव विज्ञानियों को अब सीआईए एवं सं. रा. सेना के जासूसों के रूप में देखा जाता था। विश्वभर में विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रकार्य कर रहे मानव विज्ञानियों को सरकारों के सामने यह सिद्ध करने एवं उन्हे मनाने में अत्यंत कठिनायियों का सामना करना पड़ा कि उनके द्वारा किए जा रहे शोधकार्य का किसी भी प्रकार से सं. रा. जासूसी से कोई संबंध नहीं है(फेरेरो एवं एंड्रेत्ता, 2014)।

एक अन्य दिलचस्प मामला मानव भू–भाग प्रणाली से संबन्धित है। सितंबर 11, 2001 में जब विश्व व्यापार केंद्र की जुड़वां इमारतें ध्वस्त हो गईं, तब मध्य पूर्व देशों में काम कर रहे मानव विज्ञानियों की भूमिका एवं उत्तरदायित्त्वों में परिवर्तन आया। मध्य पूर्व में कार्यरत मानव विज्ञानियों के लिए एक नए युग की शुरुआत हुई। अब उन्हे सं. रा. सेना की सैन्य जासूसी विभाग द्वारा एक परियोजना के अंतर्गत रोजगार मिलने लगा जिसका नाम था मानव भू–भाग प्रणाली (एचटीएस)। मध्य पूर्व में सं. रा. सेना द्वारा चलाये जा रहे सैन्य अभियानों में सहायता करने के लिए, सैन्य कमांडरों को क्षेत्र, लोग एवं उनकी भाषा को जानने में सहायता तथा मदद करने के लिए मानव विज्ञानियों को वहाँ रखा जाना लगा जहां पर सैन्य अभियान चल रहे होते थे। एचटीएस का बजट इसकी उत्पत्ति के बाद से ही निरंतर बढ़ता रहा तथा 2010 तक, एचटीएस का वार्षिक बजट 150 मिलियन यूएस डॉलर तक आ पहुंचा था तथा इस प्रणाली के अंतर्गत 31 दलों का गठन किया जा चुका था। एचटीएस मात्र मध्य पूर्व तक ही सीमित नहीं है अपितु अब इसका विस्तार लगभग उन सभी क्षेत्रों में हो चुका है जहां पर भी सं. रा. सेना को उनकी आवश्यकता होती है(फेरेरो एवं एंड्रेत्ता,, 2014)।

इस प्रकार की परियोजनाओं की मानवविज्ञान से जुड़ी व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा आलोचना की गयी। सोसाइटी फॉर ऐप्लाइड एंथ्रोपोलोजी (एसएफएए) एवं अमेरीकन एंथ्रोपोलोजिकल एसोशिएशन (एएए), दोनों ने ही युद्ध प्रयासों के साथ जुड़े हुए मानव विज्ञानियों की आलोचना की। उनका मत है कि उस प्रकार की संलिप्तताएँ नैतिक संहिता एवं व्यावहारिक मानवविज्ञान की व्यावसायिक संहिताओं का उल्लंघन करती हैं। मानव विज्ञानियों के कुछ ऐसे समूह भी हैं जो इस प्रकार के प्रयासों का समर्थन करते हैं, चूंकि उनका मत है कि उस प्रकार के प्रयासों से युद्ध कर रहे दो पक्षों के बीच शांति वार्ताओं की परिस्थिति बनाई जा सकती है, यदि वह एक दूसरे को अच्छे ढंग से समझते हों। इस प्रकार के मानवविज्ञानी उन प्रयासों को सांस्कृतिक बातचीत के रूप में देखते हैं। तर्क चाहे जो भी हो, मानव विज्ञानियों ने अपनी संलिप्तताओं एवं उस

प्रकार के मुद्दों पर हो रही चर्चाओं से महत्त्वपूर्ण सबक सीख लिए थे। उन्होंने वित्त–पोषण करने वाली एवं उन्हें काम पर रखने वाली उन संस्थाओं के उद्देश्यों के संबंध में अधिक जागरूक एवं सावधान रहना सीखा जो उनकी विशेषज्ञता का उपयोग क्षेत्र अध्ययनों के लिए करना चाहती थी। नैतिकता के इर्द–गिर्द होने वाली इन चर्चाओं ने इस विषय में एक कशमकश वाली प्रक्रिया को जन्म दिया है, जिसने मानव विज्ञानियों को अपने हस्त–कौशल के लिए अधिक प्रतिबद्ध करने तथा अपने काम एवं कौशल के उपयुक्त उपयोग के प्रति अधिक जागरूक बना दिया है। इसके साथ ही हम अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिक जिम्मेदारियों के प्रमुख क्षेत्रों पर चर्चा करने की ओर बढ़ आए हैं(फेरेरो एवं एंड्रेत्ता, 2014)।

अपनी प्रगति जांचें

7. कैमलोट परियोजना एवं मानव भू–भाग(टेरेन) प्रणाली क्या है? अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में व्याप्त नैतिक मुद्दों के साथ उनका क्या संबंध है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान में नैतिकता का वर्णन एवं व्यावसायिक उत्तरदायित्व

सोसायटी फॉर एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी (SfAA) ने अनुप्रयुक्त मानवविज्ञानियो के नैतिक उत्तरदायित्वों के प्रमुख क्षेत्रों का प्रारूप तैयार किया है। यह नैतिक संहिताएँ कुछ अन्य संगठनों के साथ भी संबन्धित हैं जो नैतिक उत्तरदायित्वों के क्षेत्रों में काम कर रहे हैं, जैसे अमेरिकन एंथ्रोपोलाजी एसोसिएशन। नैतिक उत्तरदायित्वों के क्षेत्रों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

1. *अध्ययन के अंतर्गत लोगों के प्रति उत्तरदायित्वः* मानवविज्ञानियों की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी उन लोगों के प्रति होती है जिनका वे अध्ययन करते हैं। लोग किसी भी प्रकार के मानवविज्ञान अनुसंधान और अनुप्रयोग के केंद्र में हैं। लोगों के हितों की रक्षा करना उनका पहला और सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। लोगों के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कल्याण की रक्षा करने की आवश्यकता है। यह मानवविज्ञान में समग्रता के विचार के साथ प्रतिध्वनित होता है। जैसा कि विषय एक समग्र समझ के लिए कहता है, नैतिकता भी लोगों के समग्र कल्याण की ओर निर्देशित होती है। उनकी भलाई की रक्षा के लिए, मानवविज्ञानी का यह कर्तव्य है कि वे अपने शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से बताएं और लोगों के साथ अनुसंधान और उसके आवेदन के इच्छित और अनपेक्षित परिणामों के बारे में भी बात करें। जब वह ऐसा करेंगे, तभी लोग शोधकार्य में अपनी भागीदारी अथवा गैर–भागीदारी के संबंध में निर्णय लेने की एक बेहतर परिस्थिति में होंगे। इसका अर्थ यह निकलता है कि लोगों की भागीदारी सदैव स्वैच्छिक होना चाहिए तथा लोग सूचित विकल्पों का चयन करने

की तथा अपनी भागीदारी के संबंध में सूचित सहमति देने की परिस्थिति में होने चाहिए। यह सुनिश्चित करना मानव विज्ञानियों की ज़िम्मेदारी बनती है कि शोधकार्य में शामिल सूचनाप्रदाताओं एवं सहभागियों का कभी शोषण नहीं होना चाहिए तथा किसी भी कीमत पर उनके अधिकार संरक्षित रहने चाहिए। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानव विज्ञानियों को शोधकार्य प्रक्रिया के दौरान सहभागियों को अपनी गोपनियता बनाए रखने के सभी साधन तथा शोधकार्य के प्रकाशन के समय परियोजना रिपोर्ट, लेख तथा पुस्तकों को उपलब्ध करवाना चाहिए। "जिन लोगों का हम अध्ययन करते हैं, उन्हें गोपनियता की सभी संभव सीमाओं के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए तथा हमारे अपने संबन्धित देशों में वर्तमान की कानूनी परिस्थितियों में वास्तविक रूप से संभव गोपनियता से आगे बढ़कर किसी प्रकार की की वचनबद्धता नहीं दिखानी चाहिए(एसएफएए वेबसाइट)"। यह भी मानव विज्ञानियों की ही ज़िम्मेदारी बनती है कि वह लोगों के समक्ष परियोजनाओं के लक्ष्यों, विधियों एवं वित्त–पोषण के बारे खुलासा करें। अपने ज्ञान की सीमाओं में रहते हुए हमें क्षेत्र में अपनी गतिविधियों से जुड़े हुए महत्त्वपूर्ण जोखिम का भी खुलासा करना चाहिए।

2. *हमारे कार्यों से प्रभावित हुई जनता एवं समुदायों के प्रति उत्तरदायित्वः* मानव विज्ञानियों को अपनी गतिविधियों से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले समुदायों की मर्यादा, अखंडता एवं महत्त्व का सम्मान करना चाहिए। इस बात को भी मान्यता प्रदान की जानी चाहिए कि मानव से संबन्धित सांस्कृतिक एवं भौतिक विविधता का महत्त्व सर्वोच्च है इसलिए मानव वैज्ञानिक कार्य को इस आयाम की अनदेखी नहीं करना चाहिए। सम्पूर्ण मानव अस्तित्व मानव विविधता पर निर्भर है इसलिए मानव विज्ञानियों कोई सदैव इसकी रक्षा के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। मानव विज्ञानियों को वित्त–पोषण करने वाली संस्थाओं की ओर से कार्रवाई करने एवं संस्तुति करने से बचना चाहिए, जो कि समुदायों के लिए हानिकारक हो सकती है। अपनी खोजों को समुदाय में प्रसारित एवं साझा करने की भी ज़िम्मेदारी मानव विज्ञानियों की बनती है। ऐसा करना पारदर्शिता को बढ़ावा देता है तथा इससे मानव विज्ञानियों एवं समुदाय के सदस्यों के बीच विश्वास का निर्माण होता है। यह समुदाय के सदस्यों को भी अपने क्षेत्रों एवं विशिष्ट समस्याओं के लिए नीतियों के सूत्रीकरण में अधिक बड़ी भूमिका निभाने में सहायता करता है।

3. *मानवविज्ञान में विषय एवं अन्य सहकर्मियों के प्रति उत्तरदायित्वः* एक व्यावसायिक मानव विज्ञानी के रूप में, विषय एवं हमारे सहकर्मियों के प्रति हमारा एक उत्तरदायित्त्व बनता है। हमें ऐसी किसी गतिविधि में नहीं लिप्त होना चाहिए जो इस विषय की तथा इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हमारे अन्य सहकर्मियों की मर्यादा को भंग करे। इसे युद्ध में तथा द्वितीय विश्व युद्धोत्तर परिदृश्य में भी निभाई गयी मानव विज्ञानियों की भूमिका के प्रकाश में देखा जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हमें अपने अध्ययन द्वारा जनित जानकारी एवं परिणामों के यथासमय प्रवाह को बाधित करने वाला कोई काम नहीं करना चाहिए। ऐसा करना वर्तमान में चल रहे एवं भविष्य में किए जाने वाले शोधकार्यों को प्रभावित कर सकता है। मानव विज्ञानियों को वित्त–पोषण करने वाली संस्थाओं लिए अपनी प्रतिबद्धता तथा उन संदर्भ की शर्तों एवं नियमों जिनसे वे अनुबंधित हैं, के साथ–साथ इस उत्तरदायित्त्व को भी समझना चाहिये। हमें उन व्यावसायिक आदतों के लिए भी

आवाज़ उठानी चाहिए जिन्हें हमने शोधकार्य के दौरान धारण किया, चूंकि यह बातें चीजों को परिप्रेक्ष्य में रखने में सहायता प्रदान करती हैं। इसका अर्थ है कि कार्यक्षेत्र में काम कर रहे दूसरे लोगों के लिए आंकड़े एकत्रित करने की विधियों एवं तरीकों को स्पष्ट रूप से साझा करना एवं बताना अति आवश्यक है। मानव विज्ञानियों को उसी मुद्दे पर काम कर रहे अन्य मानव विज्ञानियों को मान्यता एवं श्रेय देने की भी नैतिक ज़िम्मेदारी होती है। सभी के द्वारा किए गये योगदान को विधिवत रूप से स्वीकृत किया जाना चाहिए तथा उसका श्रेय दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार हमें अपने किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने सहकर्मियों के बारे में अपयश अथवा रूढ़िवादिता एवं पूर्वाग्रह फैलाने में संलिप्त नहीं होना चाहिए। यह विशेषकर व्यावहारिक मानव विज्ञानियों के मामले में शत प्रतिशत सत्य है। चूंकि जोखिम अत्यधिक होता है, और नीतियों में परिवर्तन लाने में अथवा विकास लाने में मानव वैज्ञानिक कार्य का प्रभाव चिरस्मरणीय हो सकता है।

4. *विद्यार्थियों, शिक्षार्थियों एवं प्रशिक्षुओं के प्रति उत्तरदायित्वः* अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आयाम छात्रों और अन्य लोगों को प्रशिक्षण प्रदान करना है जो अनुसंधान करने के शिल्प को सीखने में रुचि रखते हैं और तत्काल समस्याओं को हल करने के लिए मानवशास्त्रीय ज्ञान का उपयोग करते हैं। इस प्रकार का प्रशिक्षण बिना किसी प्रकार के भेदभाव के सभी को उपलब्ध होना चाहिए। प्रशिक्षण का कार्य सूचित, सटीक एवं समाज की आवश्यकताओं में सुसंगत होना चाहिए। हमारे अपने व्यवसाय से संबंध रखने वाले हमारे सहकर्मियों को प्रशिक्षित होने की आवश्यकता हो सकती है। इस आवश्यकता का आभास किया जाना चाहिए तथा शिक्षा को प्रारम्भ करने के आयाम को सर्वोच महत्त्व दिया जाना चाहिए। हम सभी को अपने कौशल एवं ज्ञान को पोषित करते रहना चाहिए तथा और अधिक कौशल प्राप्त करने एवं अपने ज्ञान के स्तर को निरंतर बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए। इसे प्रशिक्षण कार्य में एक महत्त्वपूर्ण आयाम समझा जाना चाहिए। प्रशिक्षण में नैतिक मुद्दों से संबन्धित महत्त्वपूर्ण एवं पर्याप्त घटक भी होने चाहिए। इसे विषय एवं अपने सहकर्मियों के लिए अपनी प्रतिबद्धताओं का अनुसरण करते हुए, हमें शोधकार्य एवं प्रकाशन, दोनों स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा दिये गए योगदान को विधिवत रूप से स्वीकार करना चाहिए। अपने विद्यार्थियों के साथ काम करते हुए मानव विज्ञानियों को गैर–शोषक ढंग से व्यवहार करना चाहिए।

5. *कर्मचारियों, प्रायोजकों एवं वित्त–पोषक संस्थाओं के प्रति उत्तरदायित्वः* अधिकतर अनुप्रयुक्त मानवविज्ञान किसी न किसी वित्त–पोषण अथवा प्रायोजन के अंतर्गत ही होता है। इसलिए मानवविज्ञानी वित्त–पोषक संस्था के लिए वित्त का उपयुक्तढंग से उपयोग करने हेतु तथा शोधकार्य का संचालन ईमानदारी से करने एवं अपनी खोजों को प्रेषित करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। परियोजना का निश्चित समायावधि में ही सम्पन्न होना भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। चूंकि, व्यावहारिक परियोजनाओं के अंतर्गत निश्चित समायावधि में ही किसी प्रकार के निर्दिष्ट परिवर्तन के कारकों द्वारा हस्तक्षेप अथवा शुरुआत करने की आवश्यकता होती है। इसलिए व्यावसायिक ज़िम्मेदारियों की प्रकृति एवं विस्तार का स्पष्ट रूप से प्रारूप तैयार कर लेना चाहिए तथा नियोक्ता अथवा प्रायोजक के साथ इस पर चर्चा की जानी चाहिए। कुछ निश्चित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को अनुकूल बनाने के लिए तथ्यों

का दमन एवं परिणामों से छेड़छाड़ कदापि नहीं करना चाहिए। मानव विज्ञानियों को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं एवं शोधकार्य के प्रयोजन के बारे में ईमानदार होना चाहिए।

6. *समाज के प्रति उत्तरदायित्वः* अपने शोधकार्य के परिणामों को बड़े पैमाने पर समाज तक प्रसारित करना किसी व्यक्ति की एक नैतिक ज़िम्मेदारी होती है। उन्हें अपने एवं पोषक सरकारों के बीच सम्बन्धों के बारे में ईमानदार होना चाहिए। उन्हे शोधकार्य के लिए आवश्यक मंजूरी पाने के लिए अपनी व्यावसायिक नैतिकता से कदापि समझौता नहीं करना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचें

8. एप्लाइड एंथ्रोपोलॉजी सोसायटी द्वारा उल्लिखित अनुप्रयुक्त मानवविज्ञानी के व्यावसायिक उत्तरदायित्व क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3.7 सारांश

आजकल मानवविज्ञानी बड़ी संख्या में निजी क्षेत्रों में कार्यरत हैं। व्यावहारिक मानवविज्ञानियों को भी निजी कंपनियों द्वारा नियुक्त किया जा रहा है। इन परिस्थितियों में वह अपने नियोक्ताओं के नियमों एवं अधिनियमों में बंधे हुए होते हैं। इस तरह एक महत्त्वपूर्ण नैतिक दुविधा की परिस्थिति उत्पन्न होती है। चूंकि, मानवविज्ञानियों की व्यावसायिक नैतिकता कुछ और हो सकती है जबकि नियोक्ताओं के लाभ–अभिप्रेरणाओं के लक्ष्य एवं उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं। इस संदर्भ में मानव विज्ञानियों को ऐसे महत्त्वपूर्ण परिणामों को प्रकाशित करने से रोका भी जा सकता है, जिनके कारण उनके नियोक्ता के लाभ में बाधा उत्पन्न हो सकती है। अतः इस प्रकार यह व्यावसायिक नैतिकता एवं नियोक्ता के लाभ–अभिप्रेरणाओं के बीच एक मतभेद की परिस्थिति बन जाती है। हालांकि, मानव विज्ञानियों को किसी भी कीमत पर अपनी व्यावसायिक नैतिकता के साथ समझौता नहीं करना चाहिए। इन परिस्थितियों में मानवविज्ञानी को एक मानवविज्ञानी कार्यकर्ता वाली भिन्न भूमिका में प्रवेश करना चाहिए। इस बात के विस्तृत वर्णन के साथ कि कैसे व्यावहारिक मानवविज्ञान में नैतिकता को देखा जाता है, इसलिए मानवविज्ञान के किसी विद्यार्थी को इस बात से सतर्क रहना चाहिए, कि जैसे ही वह किसी संस्कृति अथवा समुदाय के जीवन में उनका अध्ययन करने तथा वास्तविक समाधान प्राप्त करने में उन्हे सहायता प्रदान करने के लिए प्रवेश करते हैं, ऐसे में उनकी भूमिका किस आवश्यकता पर बल देती है, उन्हें पता हो।

3.8 संदर्भ

Bastide R. (1974). *Applied Anthropology*. London: Harper Torchbooks.

Ferraro G. and Andreatta S. (2014).*Cultural Anthropology: An applied perspective*. Stanford: Cengage Learning.

Harris M. (1968). *The Rise of Anthropological Theory: A history of theories of culture*. New York: Thomas Y. Crowell Company.

Malinowski B. (1927). "The Life of Culture". In G. E. Smith, *et al.,* eds., *The Diffusion Controversy.* New York: Norton, 26-46.

Nahm S. and Rinker C.H. (eds.). (2016). *Applied Anthropology: Unexpected spaces, topics and methods*. New York: Routledge.

Podolefsky A., Brown P.J. and Lacy S.M. (eds.). (2003). *Applying Anthropology: An introductory reader*. New York: McGraw-Hill.

Price D. (2002). "Lessons from Second World War Anthropology: Peripheral, persuasive and ignored contributions". *Anthropology Today*. (8):3- 14-20.

Web resource:https://www.appliedanthro.org/

3.9 आपकी प्रगति की जाँच के लिए उत्तर

1) अनुभाग 3.0 के पहले, दूसरे एवं तीसरे अनुच्छेद(पैराग्राफ) को देखें।

2) अनुभाग 3.1 के पहले अनुच्छेद को देखें।

3) अनुभाग 3.1 के दूसरे अनुच्छेद को देखें।

4) *अफ्रीकन सिस्टम ऑफ किनशिप एंड मैरेज।*

5) अनुभाग 3.3 देखें।

6) अनुभाग 3.4 देखें।

7) अनुभाग 3.5 देखें।

8) अनुभाग 3.6 देखें।